रोज़ा और नफ्स की पाकी

इमादुल उलमा अल्लामा सै0 मुहम्मद रज़ी साहब ताबा सराह

हज़रत ईसा बिन मरयम अलैहिमस्सलाम का क़ौल है कि इन्सान के नफ्स की बुराइयाँ दूर करने और उसे पाक व पाकीज़ा बनाने के दो ज़रिए हैं एक रोज़ा दूसरे नमाज़। अगर पूरे ख़ुलूस और सच्चे दिल के साथ नमाज़ पढ़ी जाए और उस पर पाबन्दी की जाए। इसी तरह पूरी शर्तों के साथ रोज़ा रखा जाए तो इन्सान का ज़मीर बुराइयों से पाक हो जाता है। नफ्स की इसी सफाई का नाम तक़वा और तज़किया है। इसी नफ्स की पाकी की अहम ज़रूरत की तरफ सूरए बक़रह की उस आयते करीमा में इशारा फरमाया गया है जो ''कुतिब अ़लैइकुमुस्सियाम'' के जुमले से शुरु होती है। यह बात जो हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम ने फरमाई थी इसका ताल्लुक़ तो आम रोज़े की ज़रूरत और फाएदे से था लेकिन माहे रमज़ान के रोज़ों में यह फाएदा ज़ियादा अहमियत के साथ सामने आता है इसलिए इसमें रोज़ों के एक–साथ होने की वजह से नफ्स की पाकी और सफाई का एक महीने तक बराबर मौक़ा मिलता रहता है यानी अगर एक रोज़ इस पाकी के मक़सद में कोई कमी रह जाती है तो दूसरे दिन या दूसरे दिनों में इसकी तकमील हो जाती है। मगर यह बात हमें पूरी तरह याद रखनी चाहिए कि सफाई और नफ्स की पाकी का फाएदा हमें इन ही रोज़ों से हासिल हो सकता है जो हक़ीक़ी रोज़े हैं और वह पूरी शर्तों के साथ रखे जाएँ क्योंकि सिर्फ फाक़ा कर लेने और भूखा और प्यासा रहने का नाम रोज़ा नहीं है। हुज़ूर अनवर (स0) ने एक हदीस में फरमाया हैः

''मन सामा शह्रा रमज़ान फी इन्सातिन व सुकूतिन वकफ्फि समअिही व बसरिही व लिसानिही व यदिही व जवारिहिही मिनल हरामि वलकिज़्बि वलग़ीबति वलअज़ा क़रुबा मिनल्लाही जल्ला सनाउहू यौमल क़ियामति हत्ता यमस्सा रुकबतहु इब्राहीमा अलैहिस्सलाम''

जो शख़्स माहे रमज़ान में पूरे सुकून व एख़लास व वक़ार के साथ रोज़े रखे और अपने कानों, ज़बान और हाथों और तमाम बदन के हिस्सों को हराम बातों से, झूठ बोलने और किसी के पीठ पीछे बुराई करने और लोगों को तकलीफ पहुँचाने से बचा रहे, उसका मरतबा क़यामत के रोज़ बहुत बड़ा होगा। यहाँ तक कि वह हज़रत इब्राहीम ख़लीलुल्लाह अलैहिस्सलाम से बहुत नज़दीक हो जाएगा।

एक दूसरी हदीस में हुज़ूर (स0) ने फरमाया है : ''इज़ा सुम्त फल्यसुम सम्उका व बसरुका वला यकूनन्ना यौमु सौमिका कयौमि फितरिका''

जब रोज़ा रखो तो ज़रूरी है कि तुम्हारे कान और आँखें भी रोज़े से हों और तुम्हारे रोज़े का दिन ऐसा न हो जैसा वह दिन होता है जब तुम रोज़े से नहीं होते हो।

मक़सद यह है कि रोज़ा रखने वाले के

लिए ज़रूरी है कि रोज़ा उन शर्तों के साथ रखे जो शरीअत ने तय कर दी हैं और उन बातों को न करे जो मना हैं चाहे वह ऐसी हों जो हर हालत में मना हों या सिर्फ रोज़े की हालत में मना की गयी हों ताकि इससे नफ्स में ख़ुदा की इताअत का शौक़ जागे, अल्लाह से क़रीब होने की जुस्तजू का शौक़ दिल में उभरे और इन्सान का ज़मीर आम बुराइयों से पाक साफ हो सके। ग़रज़ रोज़ा नफ्स की सफाई का एक बड़ा असरदार ज़रिया है जिससे इन्सान अपनी नफ्सानी चाहतों को अक़्ल व शरीअत के ताबे बना सकता है, और ईमान व तक़्वे की उन अज़ीम खूबियों को पैदा कर सकता है जिनके बिना दुनिया और आख़िरत में कामयाबी और नजात नहीं हो सकती जिसे दूसरे लफ्ज़ों में हम तज़किया–ए–नफ्स (दिल की सफाई) कहते हैं।

फितरे की अहमियत

फितरा अदा करना हर मुसलमान पर फर्ज़ है और अहादीस में इसे रोज़ों की क़ुबूलियत का ज़रिया क़रार दिया गया है। ज़काते फित्र 2 हिजरी में फर्ज़ की गयी थी जिसके बाद हमेशा के लिए इसका अदा करना हर मुसलमान पर शरई क़वाएद और शर्तों के मुताबिक़ फर्ज़ हो गया है। हुज़ूरे अनवर (स0) ने ज़काते फितरा अदा करने की बहुत ताकीद फरमायी है और फरमाया है कि जो मुसलमान फितरा अदा करता है तो अल्लाह साल भर के लिए मौत को उससे दफा कर देता है। इसके साथ ही यह बात भी मालूम रहना चाहिए कि ऐसा हरगिज़ नहीं है कि जो शख़्स रोज़े रखे सिर्फ उसी पर फितरा अदा करना फर्ज़ हो और जो न रखे उस पर फर्ज़ न हो बल्कि यह हर मुसलमान पर फर्ज़ है चाहे उसने रोज़े रखे हों या न रखे हों। ज़काते फितरा को सदक़–ए–फित्र भी कहते हैं। दोनों का मतलब एक ही है। ज़कात या सदक़–ए–फित्र ख़ुद अपनी तरफ से और उन तमाम लोगों की तरफ से जो ज़ेरे किफालत व ज़ेरे परवरिश हों अदा करना होगा। इसका अदा करना उन लोगों पर फर्ज़ होता है जो शरई इस्तेलाह में मोहताज न हों, बाज़ ने कहा कि वह ऐसे लोग हों जिनके पास उनके ज़रूरी ख़र्चों के सिवा इतना सामान मौजूद हो जिसकी मिक़दार निसाबे ज़कात के बराबर हो और कुछ उलमा कहते हैं कि इसके वुजूब में सिर्फ इतना ही काफी है कि साल भर के ख़र्च का सहारा मौजूद हो। शौव्वाल का चाँद होते ही ज़काते फित्र का अदा करना फ़र्ज़ हो जाता है जिसने नमाज़े ईद से पहले अदा कर देना चाहिए। सरकारे दो आलम (स0) ने फरमाया है जिसका मफहूम यह है कि जिस शख़्स ने नमाज़े ईद से पहले फितरा अदा कर दिया उसका यह अमल दरज–ए–क़ुबूलियत हासिल करेगा।

फितरे की अहमियत के बहुत से पहलू हैं। इससे ग़रीब व नादार तबक़े के लोगों की बहुत सी हाजतें पूरी हो जाती हैं। और ख़ुद पैसे वालों के दिलों में ग़रीबों की तकलीफ और उनके दुख–दर्द का एहसास भी उभरता है और उन्हें इस बात का इल्म भी हो जाता है कि कौन–कौन लोग मदद लेने के हक़दार है इसके एलावा आपस में अमीरों, ग़रीबों और छोटे, बड़ों के दरमियान भाईचारगी व हमदर्दी और इस्लामी बिरादरी का जज़्बा सामने आता है साथ ही रोज़े में जो कमी हो गयी हो वह भी दूर हो जाती है। इस सिलसिले में यह भी मालूम होना चाहिए कि

जो लोग इस्तेलाहे शरीअत की बुनियाद पर फक़ीर व मोहताज कहे जाते हैं उनसे सदक़–ए–फित्र की अदायगी साक़ित है लेकिन अगर वह किसी न किसी सूरत से इसको अदा कर दें तो उन्हें भी इसका सवाब ज़रूर हासिल होगा। रहा ज़काते फित्र का मसरफ यानी यह किसको दी जाए तो जो आठ मसारिफ इस्लाम ने आम ज़काते माल के लिए मुक़र्रर किए हैं वही इसके भी मसारिफ हैं जिनका कुर्आन पाक में तफसील से ज़िक्र मौजूद है। इन आठ मसारिफ में "फी सबीलिल्लाह" का मसरफ भी है जिसमें वह तमाम बातें शामिल हैं जो तक़र्रुबे इलाही का सबब और वसीला बन सकें। यही तमाम मसारिफ ज़काते फित्र के भी हैं अलबत्ता रिश्तेदार फक़ीर और मिसकीन हर हाल में मुक़द्दम हैं एक आदमी एक फितरा कई ज़रूरतमन्दों को भी थोड़ा–थोड़ा दे सकता है और इसकी कुल मिक़दार एक ही शख़्स को भी अदा कर सकता है और यह भी मुमकिन है कि कई आदमी अपने–अपने फितरे एक ही आदमी को दे दें मगर इस हद तक कि वह मोहताज शख़्स शरअन "ग़नी" (मालदार) न कहलाए और मोहताज की शरअी इस्तेलाह से ख़ारिज न हो जाए। क्योंकि इसके बाद फिर उसे फितरा देना जाएज़ न होगा। फितरे में ग़ल्ले के बजाए इसकी क़ीमत भी दी जा सकती है। जो लोग अयाल में दाख़िल हों और उनका ख़र्च वाजिब हो उन्हें फितरा नहीं दिया जा सकता। इसको मुलाज़मीन की तनख़्वाहों में हिसाब नहीं किया जा सकता। फिक़ए हनफी में सादात को ज़काते फित्र नहीं दी जा सकती मगर फिक़ए जाफरी में अगर ज़काते फित्र सादात की हो तो उसे सादात ले सकते हैं। ग़ैर सादात की ज़कात सादात नहीं पा सकते।

फिक़ए हनफी के मुताबिक़ एक शख़्स को एहतियातन दो सेर गेहूँ या आटा या इसकी क़ीमत अदा करना चाहिए इस गेहूँ या आटे से मुराद इसकी वह क़िस्म है जो आम तौर पर इस्तेमाल की जाती हो।

मगर फिक़ए जाफरी में एक फितरे में एहतियातन साढ़े तीन सेर गेहूँ या आटा, या इसकी क़ीमत अदा करना चाहिए जो इसकी उस क़िस्म के रेट के मुताबिक़ हो जिसे आमतौर पर सब इस्तेमाल करते हैं।

अल्लाह हम सब मुसलमानों को अहकामे ख़ुदावन्दी पर अमल करने की तौफीक़ अता फरमाए। (आमीन) □□□